शोध- संक्षेपिका

पी• एच• डी• उपाधि हेतु प्रस्तुत किए गए मेरे शोध-प्रबंध का शीर्षक है- "संजीव के उपन्यासों में आदिवासी समाज के विस्थापन से उत्पन्न संकट और संघर्षः एक अनुशीलन है।

स्वातंत्र्योत्तर रचनाकारों की बहुआयामिता काबिल-ए-तारीफ है। समकालीन उपन्यासकारों में संजीव का महत्वपूर्ण स्थान है। इन्होंने हिन्दी साहित्य की अनेक विधाओं में अपनी लेखन प्रतिभा का लोहा मनवाया है । इनके लगभग सभी रचनाओं में आदिवासी-वनवासियों के सांस्कृतिक, राजनीतिक , सामाजिक परिवर्तन और उनके विस्थापन से उत्पन्न जीवन के संकट और संघर्ष को प्रमुखता से उठाया गया है। संजीव अपने समाज की विडम्बना, विसंगतियों और चुनौतियों को सही रूप में परखते है और अपने समय की सामाजिक, राजनीतिक समस्या को प्रमुख रूप से उठाते हैं । सत्ता और सत्ता को चलाने वाले ठेकेदार, भ्रष्ट पुलिस तंत्र, भू-माफिया की वे गहरी पड़ताल करते हैं । गुलामी सत्ता से मुक्त हुई जनता की भारतीय शासन से बड़ी आशा और आकांक्षा थी, लेकिन जल्द ही जनता का यह स्वप्न टूट गया। आम जनता के जीवन में हर तरफ बेबसी और लाचारी छा गई। सामन्ती शोषण अब आदिवासी समाज पर हावी था। गोरे अंग्रेज तो चले गये उसके बावजूद भारतीय काले अंग्रेज शासन कर रहे थे। गाँवों में अब भी उच्च वर्ग का वर्चस्व बना हुआ था, और आज के औद्योगिक प्रतिष्ठान उनके दमन और शोषण के प्रतीक बने हुए थे। अब भी गाँव के निम्नवर्ग के लोग न तो उनके सामने खाट पर बैठ सकते थे और न ही सिर उठाकर चल सकते थे। संजीव यह सब देखते हुए आदिवासी समाज के जीवन के विविध आयामों को मुख्य धारा से जोड़ने का प्रयास करते हैं। समकालीन कथाकारों में संजीव एक विशिष्ट कथाकार के रूप में चर्चित रहे हैं। उनके लेखन साहित्य जगत में मौलिक दृष्टिकोण और मौलिक चेतना से उद्धृत हुआ है। तभी कथित और परम्परावादी दृष्टिकोण को त्यागता हुआ संजीव का लेखन जीवन के विविध आयामों से अपना सरोकार स्थापित करता है और समाज के वंचित तबकों को मुख्यधारा से जोड़ने का अथक प्रयास करता है। इनकी पहली व्यंग्य रचना 'किस्सा एक बीमा कम्पनी की एजेंसी का' 'सारिका' पत्रिका में अप्रैल १९७६ ई• में प्रकाशित हुई तब से लेकर आज तक इनका लेखन अनवरत जारी है। संजीव की कथायात्रा किसी लीक की कथा-यात्रा नहीं बल्कि वंचित वर्ग की कथा-यात्रा है। संजीव भोगे यथार्थ को महसूस करते हैं। इनके लेखन में जीवन की विविधता और आदिवासी समाज के

संकट और संघर्ष का यथार्थ चित्रण दिखाई देता है। संजीव के उपन्यास पैंतीस वर्षों के आजाद भारतीय मानस के कैनवास पर उभरे आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक व सांस्कृतिक यथार्थ के शिनाक्त है। देश के लाखों दलित दमित, प्रताड़ित, उपेक्षित जनों की जिजीविषा और संघर्ष की यात्रा है। संजीव के उपन्यासों में 'किशनगढ़ के अहेरी', 'सर्वस', 'सावधान! नीचे आग है', 'धार', 'पॉव तले की दूब', 'जंगल जहाँ शुरू होता है', 'सुत्रधार' , 'आकाश चम्पा', 'रह गई दिशाएँ इसी पार', और 'फाँस' शामिल है।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध के विषय को शोध-कार्य एवं शोध-प्रबंध लेखन की सुविधा की दृष्टि से निम्नलिखित छः अध्यायों में विभाजित किया गया है।

प्रथम अध्याय - भारतीय नवजागरण : आदिवासी और विस्थापन

१.१- भारतीय नवजागरण के अन्तर्विरोध

१.२- भारतीय नवजागरण और हाशिये का समाज

१.३- विस्थापन का स्वरूप

१.४- औद्यौगिक विकास और आदिवासी

द्वितीय अध्याय - संजीव : समय से साक्षात्कार

२.१- संजीव और उनका समय

२.२- संजीव का कृतित्त्व

२.३- संजीव की उपन्यास दृष्टि का विकास

२.४- हिन्दी में आदिवासी उपन्यास : रूपरेखा

तृतीय अध्याय - आदिवासी समाज विस्थापन और संघर्ष

३.१- आदिवासी समाज की अस्मिता का संघर्ष

३.२- आदिवासी समाज के विस्थापन की समस्या

३.३- जल, जंगल और जमीन का संकट

३.४- आदिवासी समाज में नारी

चतुर्थ अध्याय - संजीव के उपन्यासों में विस्थापन से उत्पन्न आर्थिक और राजनीतिक संकट

४.१- विस्थापन की समस्या और संजीव के उपन्यास

४.२- जल, जंगल और जमीन का संकट और संजीव के उपन्यास

पंचम अध्याय - संजीव के उपन्यासों में विस्थापन से उत्पन्न सामाजिक संकट

५.१- नारी समस्या

५.२- आंतरिक समस्या

५.३- आदिवासी समाज के अन्य संकट और संजीव के उपन्यास

षष्ठ अध्याय - संजीव के उपन्यासों में विस्थापन से उत्पन्न धार्मिक और सांस्कृतिक संकट

६.१- धर्म का संकट

६.२- उत्सव और त्यौहार का संकट

६.३- आदिवासियों की भाषा पर संकट

६.४- प्रचलित कथा भाषा एवं आदिवासियों की भाषा

प्रस्तुत शोध-प्रबंध के प्रथम अध्याय का शीर्षक है- 'भारतीय नवजागरणः आदिवासी और विस्थापन।' इस अध्याय का संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है-

१.१- भारतीय नवजागरण के अंतर्विरोधः- आधुनिक भारतीय नवजागरण की बरक्स हिंदी नवजागरण का सवाल उठाने और हिंदी क्षेत्र के विद्वानों के बीच उसे चर्चा में लाने का श्रेय डॉ•

रामविलास शर्मा को है। उनकी किताब 'महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण(१९७७) ई॰ के प्रकाशन के साथ हिंदी नवजागरण की चर्चा, हिंदी में नवजागरण की विशिष्ट वैमनस्य और विरोध के, वह वदस्तूर जारी है। अपनी उपर्युक्त किताब की भूमिका में डॉ॰ शर्मा ने हिंदी नवजागरण की अपनी बात को, उसके पक्ष में वजनदार तर्क प्रस्तुत करते हुए पेश किया था। इस हिन्दी नवजागरण को भारतीय नवजागरण विशेष: बंगाल और अन्य प्रदेशों के नवजागरण से अलग और विशिष्ट कहा था। बंगाल, गुजरात और दूसरे प्रदेशों के नवजागरण से हिन्दी नवजागरण के चरित्र का वैशिष्ट्य निरूपित करते हुए उन्होंने हिन्दी नवजागरण का उत्स, उसका गोमुख सन् १८५७ ई॰ के पहले स्वाधीनता संग्राम में देखा था एवं आगे के भारतेन्दु युग और द्विवेदी युग में उसके दूसरे और तीसरे चरणों की स्थिति बताई थी। हिन्दी नवजागरण की इस यात्रा को अगले चरण तक न पहुँचाते हुए उन्होंने १९ वीं शताब्दी उत्तरार्ध के भारतीय नवजागरण या बंगाल, गुजरात दूसरे प्रदेशों के जनजागरण से उसकी जिस विशिष्टता चरित्र को प्रस्तुत किया था, उसके पीछे उनके अपने कुछ तर्क तथा स्थापनाएँ थी।

१.२- भारतीय नवजागरण और हाशियों का समाज:- भारतीय समाज के विभिन्न वर्गों को समझने के लिए ऐतिहासिक परिप्रेक्ष में हमें वर्ण व्यवस्था से होकर वर्तमान प्रमुख रूप से जाति आधारित समाज की व्यवस्था तक गुजरना होता है । जहाँ तक आदिवासियों का सवाल है तो वे इस सामाजिक प्रणाली का अंग न होकर अलग-थलग रहते आये समुदाय हैं जिन्हें वर्ण व जाति आधारित समाज से पृथक देखना होगा। व्यवसाय के आधार पर बनने वाली श्रेणियों की दृष्टि से भी आदिवासी समुदायों का वर्ग भौगोलिक, सांस्कृतिक व नेतृत्व वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विशिष्ट ही माना जाता रहा है। सर्वप्रथम ब्रिटिश काल में व्यवसाय आधारित जनगणना सन् १९८१ में हुई थी उसके बाद सन् १९३१ में जाति पर केन्द्रित जनगणना की गई । ब्रिटिश काल में हुई इस तरह की व पश्चात्वर्ती दस सालना जनगणना के आँकड़ों में भी आदिवासी समाज को भारतीय मुख्य समाज से पृथका मानव समाज माना जाता रहा है। कुल मिलाकर भारतीय समाज को जाति व आदिवासी दो बड़े वर्गों में विभाजित करके ही देखा जाता रहा है जिसकी प्रमुख वजह यह रही है कि आदिवासी समुदायों में जाति की अवधारणा विकसित नहीं हुई। यह अलग बात है कि उनका वर्गीकरण प्रजाति हुआ आंचलिक आधार पर किया जाता रहा है। इतिहास की यात्रा में भारतीय समाज के परिवर्तन क्रम में यह संभव है कि कुछ आदिवासी समुदाय मुख्य समाज की श्रेणी में आने की प्रक्रिया में

उनकी सत्तात्मक अवधारणा की परंपरा को जाति के रूप में पहचान दी जाने लगी, यद्यपि इससे उनका जातिगत समुदाय स्थापित हो जाना नहीं मान लेना चाहिए। इसकी प्रमुख वजह है कि अभी भी समुदाय के स्तर पर उनका नामकरण उनके आवासीय भूगोल, गोत्र, गणचिह्न या वंश परंपरा के आधार पर ही जाना जाता रहा है और यही उन समुदायों की मूल पहचान है।

१.३- विस्थापन का स्वरूप:- विवेकानंद ने भारत के दलितों, गरीबों और आम जनता को झकझोरते हुए था कि ये तथाकथित कुलीन लोग जिंदा लाशें है, अजगर है , देश और सभ्यता का बोझ है। वे अवाम पर जुल्म ढाने को ही सबसे बड़ा जीवन-धर्म समझते हैं। गाँधी ने भी कहा था कि देश को राजनीतिक आजादी केवल गरीबों की क्रांतिधर्मिता से मिलेगी। ये पढ़े-लिखे लोग तो अंग्रेजी व्यवस्था के दलाल हैं।

यह नया सिद्धांत प्रचलित और लोकप्रिय हैं कि सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक विकास के लिए निर्णायक भूमिका बाजार को सौंप देनी चाहिए, सरकार को नहीं वैश्वीकरण ने आदिवासी जीवन और वनों को अपना शिकार बनाया, वनों में उपलब्ध पारंपरिक और प्राकृतिक संसाधनों में छिपी हुई अकूत संभावनाओं को ध्यान में रखकर| उद्योगों के नाम पर इन स्रोतों पर कब्जा कर लेने का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक षडयंत्र रचा गया। निजी उद्योगपति बाजार की सत्ता के केन्द्र में है, आदिवासी, दलित, गरीब और मध्यवर्ग परिधि पर, और मंत्रिपरिषदें, नौकरशाह और तथाकथित विशेषज्ञ, नवोन्मेषी बुद्धिजीविया त्रिज्या की भूमिका अदा करने लगे हैं।

जैसे-जैसे स्थानीय या देशज कंपनियों की खाल ओढ़े इन वन क्षेत्रों में प्राकृतिक संसाधनों पर अपनी गिद्ध दृष्टि गड़ाए वैश्वीकरण धसता जा रहा है, आदिवासी को इतिहास की स्मृति बनाने का यत्न भी शुरू हो गया है। खनिज, वनोपज, जल, भूमि आदि के साथ-साथ आदिवासी संस्कृति को भी उत्पाद समझकर व्यापार के योग्य बना दिया गया है तर्क यह है कि आदिवासियों के रहन-सहन बोलियों, जीवनयापन, संगीत, कलाओं आदि की समुच्चय-संस्कृति विश्व -बाजार की नई उपभोक्ता वस्तु बना दिए जाने से आदिवासी संस्कृति तालाब के बदले समुद्र के विस्तार का पर्याय समझी जाएगी। वह एक तरह से विश्व की सार्वजनिक संपत्ति बनती जाएगी।

१.४ औद्योगिक विकास और आदिवासी:- आजादी के बाद देश की आर्थिक स्थिति को सुधारना

अनिवार्य हो चुका था। इसलिए औद्योगिक विकास की दिशा में नये सिरे से पहल की गई। उद्योग और व्यापार के क्षेत्र में गति लाने हेतु औद्योगिक नियमों, फल-कारखानों और व्यापारिक केन्द्रों का निर्माण किया जाने लगा। औद्योगिकरण की यह प्रक्रिया जिस तेजी से विकसित हुई है, उसी के साथ-साथ देश में पूँजीपतियों का एक ऐसा वर्ग उभरता रहा है, जिसने आर्थिक स्वार्थों को सर्वोपरि मान लिया। इसी मानसिकता के चलते देश की आम जनता, मजदूर तथा दलित आदिवासी वर्ग के शोषण का सिलसिला भी तीव्र हुआ है। औद्योगिक विकास की इन गतिविधियों से आदिवासी-जनजातीय क्षेत्र अत्यधिक प्रभावित हुए हैं। आजादी के बाद आदिवासी इलाकों में जहाँ एक ओर विकास के नाम पर भूखंड प्राप्ति की प्रक्रिया घटित हुई, वहीं दूसरी और विकास की आड़ में आदिवासी वर्क कंगाल भी होता गया। आदिवासी अंचलों में विकास की अवधारणा आदिवासियों के सपने पूरे नहीं कर सकी। इसे झारखंड के परिवेश में चिन्हित करते हुए विद्याभूषण बताते हैं कि "आजादी के बाद के पचास वर्षों का अनुभव यह है कि झारखंड प्रदेश तथा जनजाति अंचलों में आबादी को उजाड़कर भूखंड के विकास की योजना-दृष्टि औपनिवेशिक व्यवस्था की जरूरतें तो पूरी कर रही है, मगर मूलवासियों की अपेक्षाएँ अभी तक अभिशप्त हैं।" अभिशप्त आदिवासियों की इन्हीं हालातों को संजीव 'धार' उपन्यास में चित्रित करते हैं। लिखते हैं कि 'सत्ता की साजिश अब सतह पर आ गई है और सारे अपराधी, गुंडे और दागी लोग पुलिस एवं प्रशासन उद्योगों में घुस आए हैं।" आदिवासी इलाकों में हुई गैर आदिवासियों की घुसपैठ के बारे में लेखक का यह मंतव्य आजादी के बाद हुए समूचे विकास की विडंबनाओं को भी संदर्भित करता है।

प्रस्तुत शोध प्रबंध के अध्याय दो का शीर्षक से 'संजीव समय से साक्षात्कार' इस अध्याय का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है-

२.१ संजीव और उनका समय:- समकालीन हिंदी कथा-साहित्य में संजीव एक विरल और विशिष्ट कथाकार के रूप में समादृत है। वर्जित क्षेत्रों के रचनाकार हैं। उन्हें श्रमसाध्य और शोधपरक रचनाकार के रूप में जाना जाता है। संजीव का सारा साहित्य हर तरह के शोषण और गैर बराबरी का विरोध करता है।

हाशिए पर फेंके गए लोगों को साहित्य के केंद्र में रखने की संजीव की खासियत है। आज

तक जिस समाज और वर्ग की वेदना को नजरअंदाज किया गया था संजीव उसकी पैरवी करते हैं। देश और समाज को गदलाने वाली सारी अमानवीयता कि वे धज्जियाँ उड़ाते हैं। अपने साहित्य में सदियों से अभिशप्त जीवो को वे संघर्ष की धार देते हैं। उनके यहाँ लड़ने वाली 'औरत दुनिया की सबसे हसीन और सर्वहारा वर्ग आदि को भी लड़ने का वैचारिक खाद देते हैं। उनके लेखन में जातिवाद, धार्मिक, अंधमान्यताएँ, सामंतवाद, पूँजीवाद, उदारीकरण, निजीकरण और भूमंडलीकरण आघात के केंद्र रहे हैं। वर्ग-विरहित समाज की रचनाओं में वे मार्क्स का अनुकरण करते है तो जाति-विहीन समाज के लिए महात्मा ज्योतिबा फुले, राजर्षी शाहू महाराज और डॉ॰ बाबा साहब अंबेडकर का। वह इसके आगे 'जेंडर' तक जाते हैं। वर्ग, वर्ण लिंग-मुक्ति के लिए तीनों के प्रति जवाबदेह होना जरूरी है।'

संजीव का जन्म ६ जुलाई को 'बांगरकला गाँव' जिला सुल्तानपुर, उत्तर प्रदेश में हुआ। यह परिवार श्रमिक निम्न मध्यवर्गीय था। भारतीय ग्राम की सारी सड़ी-गली मान्यताएँ 'बांगरकला गाँव' में बड़ी मुस्तैदी के साथ मौजूद है। संजीव अपनी जन्मतिथि को वास्तविक की अपेक्षा खानापूर्ति अधिक मानते हैं। जिस परिवार की अधिकतर उर्जा रोजी-रोटी के लिए खर्च होती है। वहाँ किसी बालक का जन्म विशेष महत्व नहीं रखता। गाँव के बालकों की जन्म तिथियाँ अधिकतर मास्टर या हेड मास्टर ही स्कूल में दाखिला कराते समय अनुमानित करते थे। संजीव के संदर्भ में भी यही सत्य है। डॉ॰ रविशंकर सिंह के साथ बातचीत में संजीव ने कहा है कि- "मेरे जैसे परिवार के लिए जन्मतिथि कोई महत्व की बात नहीं थी। इसे पाँचवी में नाम लिखाते समय हेड मास्टर साहब को ही इजात करनी पड़ी। जहाँ तक वास्तविक जन्मतिथि का सवाल है इसके बारे में मुझे इतना ही बताया कि अमुक के गौने के समय (हाथ से उचाई बताते हुए) मैं इतना बड़ा था और उस दिन जमकर बारिश हुई थी।"

२.२ संजीव का कृतित्व - कहानी संग्रह : प्रकाशन वर्ष

अ॰ क्र॰	कहानी संग्रह	प्रकाशन	वर्ष
१	तीस साल का सफरनामा	दिशा प्रकाशन, दिल्ली	१९८१
२	आप यहाँ हैं	अक्षर प्रकाशन, दिल्ली	१९८४

३	भूमिका और अन्य कहानियाँ	पराग प्रकाशन, दिल्ली	१९८७
४	दुनिया की सबसे हसीन औरत	यात्री प्रकाशन, दिल्ली	१९९१
५	प्रेतमुक्ति	दिशा प्रकाशन, दिल्ली	१९९१
६	प्रेरणा स्रोत और अन्य कहानियाँ	किताबघर, दिल्ली	१९९६
७	ब्लैक होल	दिशा प्रकाशन, दिल्ली	१९९७
८	डायन और अन्य कहानियाँ	नेशनल लिटरेसी मिशन	१९९८
९	खोज	दिशा प्रकाशन, दिल्ली	२०००
१०	गति का पहला सिद्धांत	मेधा बुक्स	२००४
११	गुफा का आदमी	भारतीय ज्ञानपीठ	२००६
१२	तीसरी नाक : भिड़ंत (किशोर साहित्य)	रे माधव प्रकाशन, गाजियाबाद (उत्तर प्रदेश)	
१३	गली के मोड़पर सूना-सा कोई दरवाजा	अरू पब्लिकेशन्स प्रा॰ लि॰ नई दिल्ली	२००८
१४	संजीव की कथा यात्रा तीन खंड	वाणी प्रकाशन	२००८
१५	झूठी है तेतरी दादी	वाणी प्रकाशन	२०१३
१६	गैर इरादतन हत्या उर्फ मृत्यु पूर्व का इकबालिया बयान	वाणी प्रकाशन	२०१५

उपन्यास : प्रकाशन का वर्ष

अ॰ क्र॰	**उपन्यास**	**प्रकाशन**	**वर्ष**
१	किसनगढ़ की अहेरी/ यह उपन्यास पुनर्लेखन के बाद 'अहेर' के नाम से आया है।	मीनाक्षी पुस्तक मंदिर, दिल्ली, ज्योति पर्व प्रकाशन, इंदिरापुरम गाजियाबाद	२०१४
२	सर्कस	अक्षर प्रकाशन, दिल्ली (अब राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली)	१९८४

३	सावधान! नीचे आग है	राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली	१९८६
४	धार	प्रवीण प्रकाशन, दिल्ली	१९९०
५	पॉव तले की दूब	प्रवीण प्रकाशन, दिल्ली, अब वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर	१९९५
६	जंगल जहाँ शुरू होता है	राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली	२०००
७	सूत्रधार	राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली	२००२
८	आकाश चम्पा	रे माधव प्रकाशन, प्रा॰ लि॰ गाजियाबाद (उत्तर प्रदेश)	२०११
९	रह गई दिशाएँ इसी पार	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली	२०११
१०	फाँस	वाणी प्रकाशन, दिल्ली	२०१५

बाल साहित्य : प्रकाशन और वर्ष २४/ संजीव जी के कथा-साहित्य में सर्वहारा समाज

अ॰ क्र॰	**उपन्यास**	**प्रकाशन**	**वर्ष**
१	रानी की सराय	रे माधव प्रकाशन, प्रा॰ लि॰ गाजियाबाद (उत्तर प्रदेश)	२००९

नाटक और यात्रा वृतांत : प्रकाशन

१	आपरेशन जोनाकी (नाटक)	संबोधन पत्रिका में प्रकाशित संपादक कमर मेवाड़ी
२	सात समंदर पार (यात्रा वृतांत)	प्रकाशधीन

पुरस्कार-

१	अपराध (प्र॰ पु॰) टाइम्स ऑफ इंडिया सारिका सरो भाषा कहानी प्रतियोगिता,	दिल्ली	१९८०
२	कथा लेखन के लिए	प्रथम कथाक्रम सम्मान लखनऊ	१९९७
३	जंगल जहाँ शुरू होता है	इंदू शर्मा अंतरराष्ट्रीय कथा सम्मान, लंदन	२००१

४	प्रेमचंद सम्मान	कोलकाता, आसनसोल, बांदा	२००२
५	भिखारी ठाकुर लोक सम्मान	कुतुबपुर, कोलकाता	२००३
६	पहल सम्मान	जबलपुर	२००५
७	जनपद सम्मान	सुल्तानपुर	२००६
८	सुध स्मृति सम्मान	भागलपुर, दिल्ली	२००८
९	प्रेमचंद सहाजबाला स्मृति सम्मान	दिल्ली	२०१४
१०	श्री लाल शुक्ल स्मृति इफको सम्मान	दिल्ली	२०१४
११	साहित्य भूषण (उत्तर प्रदेश)	लखनऊ	२०१६

विशेष:-

१- हिंदी कहानी के सबसे बड़े सम्मान 'कथा वर्ष' की विशेष संगोष्ठी के अध्यक्ष।

२- आकाशवाणी की रांची इकाई की सलाहकार समिति के भूतपूर्व सदस्य।

३- अनेक संस्थाओं के सलाहकार सदस्य।

४- कुछ महीने हैदराबाद विश्वविद्यालय के विजिटिंग स्कॉलर।

५- नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया की सलाहकार समिति के भूतपूर्व सदस्य।

६- कई कथा-कहानियों का अंग्रेजी, हिंदी तथा हिंदीतर भारतीय भाषाओं में अनुवाद के साथ-साथ मंचन।

७- कई विश्वविद्यालयों में कृतियों पर एम•फिल•, पी•एच•डी• का खोज कार्य संपन्न एवं कार्यरत। २०१६ तक यह संख्या ८० पार कर चुकी है।

८- कुछ महीने 'अक्षर पर्व' (रायपुर) के संपादक।

९- एक वर्ष एक रेमाधव प्रकाशन के संपादक।

१०- कई वर्कशॉप, सेमिनार, संगोष्ठियों के मार्गदर्शक एवं अध्यक्ष।

११- २०११-२०१२ के एक वर्ष के लिए महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय वर्धा के अतिथि लेखक।

१२- न्यूज ट्रस्ट ऑफ इंडिया के सलाहकार संपादक।

फिल्म :-

१- 'सावधान! नीचे आग है' उपन्यास के एक अंश पर 'काला हीरा' नाम से टेलीफिल्म।

२- 'हिमरेखा' कहानी प्रकाश झा प्रोडक्शन द्वारा फिल्म के लिए अनुबंधित।

३- 'सूत्रधार' उपन्यास पर फिल्म का काम चल रहा है।

४- 'फुलवा का पुल' कहानी पर जमीला बानो की कहानी 'कुएँ की चोरी' के साथ श्याम बेनेगल द्वारा प्रसिद्ध फीचर फिल्म 'बेल डन अब्बा।'

सेवा :-

वर्ष १९६५ से २००३ सैंतीस वर्षों तक इस्‌को कुल्टी में रसायनशास्त्री रहने के बाद स्वैच्छिक सेवा अवकाश।

१- प्रमुख कथा मासिक 'हंस' (नई दिल्ली) के ५ वर्षों तक कार्यकारी संपादक।

२- स्वतंत्र लेखन।

२.३ संजीव की उपन्यास दृष्टि का विकास:- संजीव का सन् १९९० में प्रकाशित 'धार' उपन्यास की कथावस्तु में एक संथाल स्त्री मैना के संघर्ष और अस्मितामूलक चेतना को बयान किया गया है। इसकी कथाभूमि में बिहार का बाँसगड़ा अँचल है। जिसका विकास की परिक्रमा में चित्र ही बदल

गया है। उसके बदले चित्र का जिक्र है "इस अंचल में झोपड़े का सिलसिला फैक्ट्री की ओर ऐसे खींचता चला गया है जैसे आग की लौ के पास पतंगे झुलसकर फिर जहाँ-तहाँ छितरा गया है। यहाँ की छटपटाती बस्ती को गोंडा जाने वाली सड़क के वाहनों की घबराहट रात-दिन खरोंचती रहती है और दूसरी ओर से बगल से गुजरने वाली लाइन की रेलगाड़ियाँ जब-तब सटकारा करती हैं। मगर बाँसगड़ा सचमुच का बाँसगड़ा है, उठकर भागता भी नहीं, यहीं पड़े मौत का इंतजार करता रहता है।" इस परिवेश में संथाल जनजाति सभ्य समाज के पूँजीपतियों, ठेकेदारों और पुलिसकर्मियों द्वारा शोषित होती है। संथालों के होने वाले शोषण से मुक्ति की चाहत लेकर मैना जन आंदोलन खड़ा करती है तो वह कोयलांचल में निजी कंपनियों के प्रतिपक्ष में जन खदानों का विकल्प पेश करती है। इसी दौरान उसे अपने घर-परिवार और समाज से भी बहिष्कृत किया जाता है। संथालों की जाति पंचायत, पितृसत्तात्मक व्यवस्था और बाहरी पूँजीपतियों के दबाव में मैना को कई अंतर्विरोधों को सहना पड़ता है। फिर भी यह जीवन आदिवासी नारी का अपना व्यक्तित्व खत्म नहीं होने देती है। मैना के समूचे अस्मितावादी पहलुओं का संजीव ने जनवादी एवं मानवीय दृष्टिकोण से अंकन किया है। यह चित्रण अकेली मैना का नहीं है बल्कि जनआंदोलनों में संघर्षरत भारतीय आदिवासी नारी की आकांक्षाओं, शोषण तथा उत्पीड़न की व्यवस्थाओं और अस्मिताओं का दस्तावेज भी है। संजीव के 'पॉव तले की दूब' उपन्यास में भी संथाल जनजाति को केंद्रीयता प्राप्त हुई है। इसमें नक्सलवादी आंदोलन के दौरान भूमिगत हुए एक कार्यकर्ता की कहानी के माध्यम से संथाल परगना के आदिवासियों की गतिविधियों और सामाजिक, आर्थिक संघर्षों को उजागर किया गया है। यह उपन्यास एक तरह से संजीव के उपन्यास सर्जन के सूत्री और अनुभव यात्रा का परिचायक रहा है।

२.४ हिंदी में आदिवासी उपन्यास : रूपरेखा:- आदिवासी जीवन को केंद्रीय विषय बनाकर स्वाधीनतापूर्ण काल में उपन्यासों का अभाव नजर आता है। यह निश्चय ही स्वीकरणीय है कि आदिवासियों तथा जनजातियों को लेकर उपन्यासों का लेखन स्वाधीनता की प्राप्ति के बाद ही हुआ है। साहित्य जगत में जिस तरह समकालीन उपन्यासकारों ने सर्वहारा वर्ग को केंद्रीय विषय के रूप में चित्रित करना शुरू किया उसी तरह आदिवासी लोगों के जीवन पर अभीलेखन शुरू किया। आदिवासी विमर्श को वर्तमान काल में अत्यंत संवेदना के साथ अभिव्यक्ति मिली है। विगत दो-तीन दशकों में आदिवासियों का जीवन हिंदी उपन्यासों में अत्यंत यथार्थता के साथ चित्रित हुआ है।

स्वाधीनता की प्राप्ति के बाद विकास के अलग-अलग अभियान शुरू हुए और देश के विभिन्न वर्गों के लोग इससे लाभान्वित हुए लेकिन यह सच है कि सबसे अधिक उपेक्षित रूप में आदिवासी ही रहे। यह वही समाज है जो यहाँ का मूल निवासी है लेकिन उसका निवास स्थान जंगलों, पहाड़ों तथा दुर्गम भागों में होने के कारण विकास की शायद ही कोई योजना उन तक पहुँची है। अज्ञान और अशिक्षा का साम्राज्य इस देश में सबसे अधिक आदिवासी समाज में ही फैला हुआ है। शासकीय स्तरों पर योजनाएँ तो बनती रही लेकिन आदिवासी समाज का बहुत बड़ा हिस्सा इससे वंचित ही रहा। शासक चुप बैठता हो तो बैठे लेकिन संवेदनशील रचनाकार कैसे चुप बैठता है? समकालीन हिंदी उपन्यासकार निश्चय ही सजग हैं। समकालीन हिंदी उपन्यासों में आदिवासी विमर्श को केंद्र में रखकर लिखे गए उपन्यासों की भरमार है। शिवप्रसाद सिंह का 'शैलूष' संजीव का 'जंगल जहाँ शुरू होता है' तथा 'धार' राजेंद्र अवस्थी का 'जंगल के फूल', 'जाने कितनी आँखें', 'सूरज किरण की छाँव' मैत्रेयी पुष्पा का 'अल्मा कबूतरी' राकेश वत्स का 'जंगल के आसपास' हिमांशु जोशी का 'कंगार की आग', मृणाल पांडे का 'देवी' और चंद्रकांता का 'कथा सतीसर' जैसे कई उपन्यास उल्लेखनीय है जो आदिवासी जीवन को विमर्श का विषय बनाते हैं। इसमें आदिवासियों के आचार, विचार, व्यवहार और अभावग्रस्त जीवन को वैचारिक ता के साथ अभिव्यक्ति मिली है। प्रायः यह सभी रचनाकार आदिवासियों के जीवन विकास के लिए चिंतित है। अतः उनके उन्नयन की पहल करते हैं।

प्रस्तुत शोध प्रबंध के अध्याय तीन का शीर्षक है- आदिवासी समाज : विस्थापन और संघर्ष, इस अध्याय का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है-

३.१ आदिवासी समाज की अस्मिता का संघर्ष:- कोई इन्हें 'वनवासी' या वन्य जनजाति कहता है तो कोई इन्हें उपहास से 'जंगली' क्या 'लंगोटिया' के नाम से संबोधित करता है। कोई इन्हें 'भूमिपुत्र' या 'वनपुत्र' कहना समीचीन समझता है तो कोई इन्हे भारत माता की 'आदिसंतान' या आदिपुत्र कहता है। यहाँ तक कि जंगल के 'अननाभिसिक्त राजा" के रूप में भी उनका गौरवपूर्ण उल्लेख किया जाता है भारतीय संविधान में उन्हें 'अनुसूचित जनजाति' के रूप में संबोधित किया है।

वास्तव में, आदिवासी आर्यों से पूर्व का मनुष्य समूह है। वह इस भूमि का मूल

मालिक है। सही अर्थों में वही क्षेत्राधिपति है। भारत अनेक जनजातियों धर्म-पंथों तथा संस्कृति संप्रदायों का भंडार है। जाति व्यवस्था भारतीय समाज व्यवस्था का प्राण-तत्व है। आर्यों का भारत आगमन, आर्य-अनार्य के मध्य चला दीर्घकालीन संघर्ष आर्यों द्वारा अनार्य आदिवासियों का क्रूर संहार और आतंक, जिसके चलते उन्हें गिरिकुहरों तथा वनों में आश्रय लेना पड़ा कोई मनोरंजनकारी घटनाएँ नहीं है, जिन्हें पढ़कर भुलाया जा सके। सही अर्थों में यहीं से आदिवासियों की सामाजिक दुर्दशा का प्रारंभ हुआ। यही उनके बनवास की कालरात्रि की शुरुआत है उनकी पूर्णता पिछड़ेपन का पूर्णरूपेण कारण बनी और वर्ण व्यवस्था भी यहीं से शुरू हुई और उन्हें वनों-जंगलों की ओर भागने का कार्य भी तभी संपन्न हुआ।

३.२ आदिवासी समाज के विस्थापन की समस्या:- भारत के इतिहास में आदिवासियों का अपना इतिहास रहा है। उनकी संस्कृति, खान-पान, रहन-सहन, बोली-भाषा सब कुछ अजूबा है। आज आदिवासियों की स्थित सोचनीय है। पेरू माचीग्रेका हो, अफ्रीका के जूल, भारत के जरवा हो या पहाड़िया, ये लूट, प्रवंचना, वेदखली, संहार और शोषण के शिकार बन रहे हैं। अपने देश में एक ओर तो है अपनी सांस्कृतिक धरोहर के शो-पीस के रूप में गणतंत्र दिवस या दूसरे उत्सवों में पेश किया जाता है या फिर दमन अन्याय के शिकार के रूप में। जबकि यह पूरी दुनिया में साम्राज्यवादी खूनी पंजों की जकड़न में छटपटाते हुए दिखाई देते हैं। हिंदी की कई पत्रिकाओं में आदिम जनजातियों पर लेखन हुआ है। प्रायः ४० वर्ष पहले वैश्विक आदिम जनजातियों पर 'धर्मयुग' अंक निकाला गया था।

आदिवासी समाज के प्रति मीडिया और साहित्य के दो तरह के दृष्टिकोण हैं एक तो आँख मूँदकर आह-वाह करना और दूसरा उन्हें सुधारने का बीड़ा उठाने वाली स्वयं शक्तियों का। कुछ विद्वान आदिवासी की संस्कृति में हस्तक्षेप के विरोधी हैं तो कुछ उन्हें मुख्यधारा में ले आने के पक्षधर हैं। परंतु अरण्यमुखी व्यामोह त्यागकर मुख्यधारा में आए बगैर उनकी उन्नति संभव नहीं है, बेशक यह उन्हें विश्वास में लेकर मौजूदा दौर में असली संघर्ष आदिवासियों के गाँव को छीनकर देशी-विदेशी पूँजीपतियों को देने के विरुद्ध है। कोयला खदानों जंगलों, वनों को समाप्त करके आदिवासियों को खदेड़ने की योजना बनाई जा रही है। छल-बल-दल से इन आदिवासियों को खदेड़ने पर सरकार तुली हुई है, ताकि उस खनिज वनज संपत्ति को उद्योगपतियों को दिया जा

सके। ६४० गाँव को खाली कराए जाने की खबर है। कुछ समय पहले हुए घोटाले में बड़ा घोटाला कोल ब्लॉक आवंटन और उड़ीसा में बॉक्साइट आज के कब्जे की नीति इन्हीं सब से संबंध है।

३.३ जल जंगल और जमीन का संकट:- आदिवासी की चिंता जल, जंगल, जमीन, भाषा,और संस्कृति है जो उसके अस्तित्व का प्रश्न है। आदिवासी उपन्यासों में इन्हीं प्रश्नों को उठाया गया है। २१ वीं सदी में जो महत्वपूर्ण आदिवासी उपन्यास लिखे गए है उनमें मैत्री पुष्पा का 'अल्मा कबूतरी', राकेश कुमार सिंह के तीन उपन्यास 'पठार का कोहरा', 'जो इतिहास में नहीं है' तथा 'हूल पहाड़ीयाँ', संजिव का 'पॉव तले की दूब', रणेंद्र का 'ग्लोबल गाँव का देवता' तथा 'गायब होता देश' और महुआ माजी का 'मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ' शामिल है और।

३.४ आदिवासी समाज में नार:- नारी समाज का एक अंग है। कोई भी समाज नारी के विभिन्न रूपों से अछूता नहीं रह सकता। उसका अपना अस्तित्व है, अहं भावना है जिसे व्यवस्था ने दबाया है। भार्या का अर्थ है भरण पोषण करने वाली। किंतु बड़े दुख की बात है कि नारी का परिवार में दोयम स्थान है। उसे युग-युग से पुरुषों के अधीन रहना पड़ा है। आर्थिक दृष्टि से परावलंबी होने के कारण वह अपने परिवार का त्याग नहीं कर सकती है। स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात भारतीय समाज में मानव मूल्यों का विघटन बहुत तीव्र गति से हुआ है। समाज में धन-संपत्ति का महत्व बढ़ता गया। भौतिक सुखों को किसी भी कीमत पर खरीदने के लिए मनुष्य, मानवीय मूल्यों की उपेक्षा करने लगा। यहीं से उसका पतन प्रारंभ हुआ। इस प्रवृति के कारण नारी पर परिवार में दहेज के नाम पर अत्याचार किया जा रहा है। आये दिन समाचार पत्रों में ऐसी घटनाएँ पढ़ने में आती हैं। नारी का परिवार में एक भोग की वस्तु के रूप में देखा गया है।

भारतीय समाज में सभी युगों में स्त्रियों की स्थिति एक जैसी नहीं रही। एक काल में भी समाज के विभिन्न स्तरों में स्त्रियों की स्थिति और कार्यों में बहुत अंतर पाया जाता है। आज भी कुछ जातियों की स्त्रियाँ निम्न जातियों की स्त्री की अपेक्षा आर्थिक रूप से अधिक आत्मनिर्भर तथा सामाजिक क्षेत्र में बहुधा अधिक स्वतंत्र दिखाई देती है। अधिकतर आदिवासी समाज में भी स्त्रियों का जीवन अपेक्षाकृत रूप से स्वतंत्र प्रतीत होता है।

प्रस्तुत शोध प्रबंध के अध्याय चार का शीर्षक है 'संजीव के उपन्यासों में विस्थापन

से उत्पन्न आर्थिक और राजनीतिक संकट' इस अध्याय का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है-

४.१ विस्थापन की समस्या और संजीव के उपन्यास:- व्यवस्थागत शोषण के कारण सर्वहारा समाज अर्थाभाव गरीबी का शिकार बना है। गाँव का सामंती शोषण तो सर्वहारा को बेगारी करने के लिए मजबूर करता है। सर्वहारा समाज अगर बेगारी न करे तो खाएगा क्या? दाना-चबेना, खेतों का गन्ना, आम और मकई के भुट्टे आदि के सहारे वह जैसे-तैसे बसर करता है। सर्वहारा की बस्ती और उनका घास-फूस और खपरैल के घरौदों को देखकर मेरी गरीबी का पता चलता है। धार्मिक आडंबर और सूदखोरी सर्वहारा समाज की गरीबी में इजाफा करती है। अर्थाभाव एवं गरीबी के कारण ही कलाकार अपनी जान जोखिम में डालकर करतब दिखाता है। ऊपरी तौर पर बोल्ड लगने वाले कलाकार भय और भूख का शिकार है। अर्थाभाव और भविष्य की असुरक्षा के कारण ही शोषक नारी कलाकारों का यौन शोषण होता है। आखिर पेट का सवाल जो है। कोलियरी में काम करने वाले मजदूरों के पास कोयला तो है पर राँधे क्या का सवाल बेचैन करता है। कोलियरी का भ्रष्ट प्रबंधन, गुंडे, दलाल, ठेकेदार आदि के शोषणात्मक रवैये के कारण गरीबी दिन-ब-दिन और भयंकर बनती जा रही है। गरीबी के कारण ही आदिवासी सिलतोड़ी, चोरी, भीख का रास्ता अपना रहे हैं। औद्योगिक विकास के नाम पर इनकी सारी संपत्ति छीनी जा रही है। और औद्योगिक में मुनाफों से इन्हें दूर रखा जा रहा है प्रकृति प्रकोप और व्यवस्थागत शोषण के कारण सर्वहारा डाकू बनने पर मजबूर है। जातिगत कर्म प्रधान संस्कृति के चलते आदिवासी समाज नीच काम करता है। उसके बदले इतना भी नहीं मिलता की भूख और तन ढकने की व्यवस्था हो सके। आदिवासी को पेट के लिए न जाने कितने कष्ट सहने पड़ते हैं। शोषक आदिवासी समाज की मेहनत की रोटी उड़ाते हैं। परिणामतः इन्हें जूझना पड़ता है।

४.२ जल, जंगल और जमीन का संकट और संजीव के उपन्यास:- जल, जंगल और जमीन का संकट आदिवासी समाज की प्रमुख समस्या है संजीव के 'सावधान! नीचे आग है', 'धार', पॉव तले की दूब' और 'जंगल जहाँ शुरू होता है', उपन्यासों में आदिवासी समाज की इस प्रमुख समस्या का विस्तार से चित्रांकन हुआ है----- जिसका विवरण निम्नलिखित है--------

सावधान! नीचे आग है:- झरिया रानीगंज कोयलांचल में कहीं-कहीं जमीन के अंदर वर्षों से आग धधक रही है। ठीक उसी तरह भूगर्भ में हिलकोरे लेते जलाशय भी हैं। इस उपन्यास में आग ही नहीं

जलप्लावन की कोयला खदान दुर्घटना का वर्णन है। यह दुर्घटना नैसर्गिक न होकर प्रबंधन निर्मित है। उपन्यास की अधिकतर घटनाएँ उधम सिंह और आशीष के माध्यम से अवतरित होती हैं। विभिन्न क्षेत्रों में विभाजित उपन्यास का प्रथम खंड 'सतह के नीचे' और द्वितीय खंड 'सतह के ऊपर' है। उपन्यास के केंद्र में जलप्लावन की घटना है। कोयला प्लांट के अंदर ब्लास्ट के फलस्वरुप अचानक अंदर ही अंदर विशाल जलराज खदान में भरने लगती है। खदान के अंदर काम करते मजदूर बेमौत मारे जाते हैं। उधम सिंह और अन्य कुछ मजदूर एयर पॉकेट में फंसे रहने के कारण इक्कीस दिनों तक मौत से जूझते हैं। आखिर वह भी हादसे का शिकार होते है एयर पॉकेट में वह मृत्यु पूर्व डायरी लिखते हैं जिससे खदान दुर्घटना की वास्तविकता का पता चलता है मदद की आस में मजदूरों को मौत को गले लगाना पड़ता है। डायरी में खदान दुर्घटना का विवरण किया गया है जबकि अंतिम पृष्ठ में दुर्घटना का कसूरवार प्रबंधन को माना गया है। पर प्रबंधन स्वयं को बेगुनाह साबित करने के लिए सबूतों को खरीदती है या नष्ट करती है। सर्वेयर बाबू मणिचंद तथा मुकुल की हत्या इसी का परिणाम है।

धार:- उपन्यास का परिवेश झारखंड का संथाल परगना है। छोटा नागपुर बाँसगड़ा आदि क्षेत्रों में संथाल आदिवासियों के शोषण को उपन्यास के में वर्णित किया गया है। क्षेत्र में कोयला उत्खनन और औद्योगिक प्रदूषण जारी है। उपन्यास में अविनाश शर्मा आदिवासी संघर्ष को वैचारिक खाद देते है तो मैना प्रत्यक्ष संघर्ष का संचालन करती है तमाम तरह के अवरोधों के बावजूद मैना अंत तक आदिवासी विस्थापन और सम्मान के लिए व्यवस्था का डटकर मुकाबला करती है। मैना आदिवासी शोषण की भुक्तभोगी होने के कारण स्वयं को भी दाँव पर लगा दी है मैना के संघर्षशील चरित्र को देखकर धनिया और गदल की याद आती है आदिवासियों के पास जीवन जीने का बेहतर विकल्प न होने के कारण वह सिलतोड़ी, चोरी या भीख को सहारा बनाते है। सहकारिता के परिप्रेक्ष्य में मैना, अविनाश शर्मा आदि खदान का अन्वेषण करते है। गरीबी, अपेक्षा और शोषण के विरोध में जनखदान का आविर्भाव समाजवादी उत्तर है। जनखदान पूँजीवादी व्यवस्था अवैध कोल माफिया और भ्रष्ट व्यवस्था पर तमाचा है।

पॉव तले की दूब:- आदिवासी विकास के बाधक तत्व को संजीव 'पॉव तले की दूब' उपन्यास में उठाते हैं। उपन्यास की कथाभूमि झारखंड का मेझिया गाँव और बाघामुड़ी आदि है। आदिवासी

समाज की जीवन, संस्कृति और संघर्ष को उपन्यास में अभिव्यक्त किया गया है। आदिवासी समाज को दोहरा संघर्ष करना पड़ता है। एक तो आदिवासी समाज के अंतर्गत और अरण्यमुखी आदिम, जड़ अवस्थाएँ, दूसरे बाहर की शोषक व्यवस्था। इनकी आदिमता के लिए जिम्मेदार है अरण्यमुखी संस्कृति और दरिद्रता के लिए उत्सवधर्मिता। अंधमान्यताओं का भूत-प्रेत, मंत्र-तंत्र, जादू-टोना इन्हें भाग्यवादी बनाता है। सच्चाई से कोसों दूर है यह आदिवासी पुरानी परंपराओं और कल्पना में विचरण करते हैं। औद्योगीकरण के नाम पर सरकार इनकी जमीन अधिग्रहण कर रही है। जमीन के बदले इन्हें कभी-कभी नाम मात्र का मुआवजा मिलता है तो कभी-कभी उससे भी हाथ धोना पड़ता है। जीवन निर्वाह के साधन जैसे जल, जंगल, जमीन इनसे छिन जाने के कारण इन पर विस्थापन या भूखे मरने की नौबत आ गई है। एक तो इन्हें नौकरी मिलती नहीं क्योंकि न पढ़ाई न हूनर, उस पर भी शराब के आदी। अगर एकाध आदिवासी को आरक्षित कोटे से कालीचरण किस्सू के समान नौकरी लग जाती है तो शराब और जादू टोने की मनगढ़ंत नामक कल्पना के चलते टिक नहीं पाती। सुदीप्त आदिवासी हमदर्द आदिवासियों को सुधारने में लगा है पर वह अपने स्वप्न को पूर्ण होते नहीं देख सका। जब वह अपने सपनों को टूटता हुआ देखता है तो फस्ट्रेशन में वीरान जगह जाकर आत्महत्या करता है।

जंगल जहाँ शुरू होता है:- उपन्यास का कथा क्षेत्र 'मिनी चंबल' के नाम प्रसिद्ध बिहार का पश्चिमी चंपारण है। इस क्षेत्र के थारू आदिवासियों के शोषण की गाथा को उपन्यास में वर्णित किया गया है। थारूओं के डाकू बनने की विवशता को उपन्यास में दर्शाया गया है। 'जंगल जहाँ शुरू होता है' उपन्यास में वाह्य पीड़ा को प्रतीकात्मक तौर पर लिया गया है जो शोषक और शोषितों का प्रतिनिधित्व करते है। थारुओं पर हुए अत्याचार को पुलिस, डाकू, नेता और जमींदारों के अन्याय अत्याचार को उपन्यास में अभिव्यक्त किया गया है। जंगल ही उपन्यास का नायक है। व्यवस्था के जंगल को जंगल के द्वारा दिखाया गया है। इस परिवेश में डाकू निर्मूलन के लिए 'ऑपरेशन ब्लैक पाइथन' शुरू किया जाता है। चार विभागों में से एक विभाग का प्रमुख डी॰ वाई॰ एस॰ पी॰ कुमार है। इस परिवेश की भौगोलिक और सामाजिक स्थिति डाकुओं के अनुकूल है। बिहार में 'फिरौती' आज फलता-फूलता फायदेमंद उद्योग है। इस उपन्यास को लिखने के लिए संजीव कई-कई वर्षों तक जंगल का श्रम साध्य भ्रमण करते रहे है। कुमार कर्तव्यनिष्ठ पुलिस अफसर है। वह डाकुओं को

मारने की अपेक्षा डाकू बनने की स्थिति को ही खत्म करना चाहता है। डाकुओं को अच्छा इंसान बनने का मौका देना चाहता है, पर भ्रष्ट पुलिस तंत्र को वह अकेला सुधार नहीं सकता। उसका व्यक्तित्व डामाडोल दिखाई देता है।

प्रस्तुत शोध प्रबंध के अध्याय पाँच का शीर्षक है 'संजीव के उपन्यासों में विस्थापन से उत्पन्न सामाजिक संकट' इस अध्याय का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है।

५.१ नारी समस्या:- भारतीय धर्म व्यवस्था में नारी का स्थान दोयम दर्जे का है। इस दोयम नारी को सामंती अहं का हर समय भाजन बनना पड़ता है। आदिवासी समाज की नारी को कभी फुसलाकर तो कभी लालच और धौंस देकर व्यवस्था और धर्म के ठेकेदार शोषित करते हैं। नारी शोषण में जातीयता, धार्मिक अंध मान्यताएँ और पाखंड सहयोग देते हैं। मनु और तुलसी की परंपराएँ सनातनियों को नारी शोषण की खुली छूट देते हैं। 'किशनगढ़ की अहेरी' उपन्यास में सामंतवादी वर्ण और जाति व्यवस्था के चलते सर्वहारा समाज की नारी को प्रताड़ित होना पड़ता है। राधा के वैधव्य का फायदा उठाकर मामा ब्रह्मचारी उसका यौन शोषण करता है। राधा इसका विरोध करती है पर उसकी एक नहीं चलती। भरी दुपहरी में मामा लोभी कुत्ते की तरह रसोई घर में जाकर राधा पर टूट पड़ता है- "मामा! मामा! मामा कुछ बोलते नहीं। नरम मांस पिंड पर पकड़ तेज होती जाती है अंधेरी कोठरी दोपहर की तरह थरथरा उड़ती है बदन की ज्वाला में गर्म सांसों की लू में झुलस उठते हैं सारे नियम।" इस बलात्कार के कारण राधा के जीवन में काला अंधेरा मंडराने लगता है अब वह पेट से है। लोकलाज से बचने के लिए वह गोमती में जान दे देती है। ब्रह्मचारी स्वयं तो राधा को भोगता है और दरोगा को भी सौपता है।

५.२ आंतरिक समस्या:- संजीव की मान्यता है कि जब तक असमानता तथा धर्म की विभीषिका को समाप्त नहीं किया जाता तब तक इससे अभिशप्त जन की मुक्ति असंभव है। भारत में सर्वहारा समाज पर जितने अन्याय-अत्याचार जातीयता के चलते किए गए है, ऐसे दुनिया में कहीं नहीं हुए। सर्वहारा समाज सनातनियों से खौफ खाया हुआ है। भारतीय वर्ण व्यवस्था की असंगत नियति के कारण सर्वहारा समाज दाने-दाने के लिए मोहताज है। गरीबी इतनी मजबूरी बस गोबरहा (गोबर से निकाले गए अन्न) तक खाकर उसे जिंदगी बसर करनी पड़ती है।

सर्वहारा समाज की दयनीय अवस्था के लिए धार्मिक पाखंड और अंधविश्वास का विशेष योगदान रहा है। नब्बे के दशक में उभरा उदारीकरण, निजीकरण और भूमंडलीकरण सर्वहारा को तबाह करते हुए पूँजीवाद को स्थापित करता है। सर्वहारा की दशा के लिए राजनीतिक भ्रष्टाचार अधिक मायने रखती है पर राजनीति की पूँजीवादी व्यवस्था के साथ इसकी जोड़ी जम रही है। परिणामतः अवैध तरीके से राष्ट्रीय संपत्ति का दोहन किया जाता रहा है और सर्वहारा समाज को बेरोजगारी का शिकार बनाया जा रहा है पुलिस 'खल निग्रह' की अपेक्षा 'सद निग्रह' का काम अधिक कर रही है। ठेकेदारों के अमानवीय शोषण के कारण सर्वहारा समाज आज भी बेगारी की दशा में जीता और मरता दिखाई देता है। सर्वहारा समाज के शोषण के लिए भ्रष्ट सर्वहारा समाज के शोषण के मूल में सामंती और धर्म व्यवस्था और जातिवाद है। मनु की वर्ण व्यवस्था आगे जाति के रूप में ढलती है। सर्वहारा समाज का व्यक्ति कितना भी प्रतिभा संपन्न क्यों न हो सनातनी उसे जाँच का हवाला देकर अपमानित करने से नहीं चूकते। 'पिशाच' कहानी के माध्यम से एक तरह से आपबीती बयान करते हैं संजीव पिशाच रूपी महात्मा बाबा मारकर भी नहीं मरता।

५.३ आदिवासी समाज के अन्य संकट और संजीव के उपन्यास:- सर्वहारा के विरोध में भ्रष्ट व्यवस्था की मिलीभगत है। जिसका एकमात्र उद्देश्य सर्वहारा को लूटना है। भ्रष्ट व्यवस्था के कारण ही तो हदबंदी के बावजूद जमींदारी जस-की-तस बनी हुई है और सर्वहारा समाज की जमीन भी लूटी जा रही है। भ्रष्ट व्यवस्था के कारण ही शोषकों को सर्वहारा समाज को लूटने और प्रताड़ित करने की छूट है। प्रशासन तंत्र की भ्रष्टता ने शोषण को बल दिया है। बाँटम से टॉप तक सिक्योरिटी से लेकर मंत्री तक सारे-के-सारे शोषक व्यवस्था के सहायक हैं। भ्रष्ट व्यवस्था के चलते जो लूट रहा है वह लूट रहा है। जो बिला रहा है। वह बिला रहा है। व्यवस्था सर्वहारा समाज पर हो रहे हर तरह के शोषण का समर्थन करती है और शोषको को बाइज्जत बरी भी करती है। वैध को अवैध और अवैध को वैध ठहराना इनके बाए हाथ का काम है।

सर्वहारा समाज की कब्र पर ही यह व्यवस्था फलती-फूलती है। इस व्यवस्था में भ्रष्ट पुलिस, अफसर, राजनीति, सूदखोर, दलाल, गुंडे, प्रबंधन, पूँजीपति, न्याय व्यवस्था आदि को सम्मिलित कर सकते हैं। उदारीकरण, निजीकरण और भूमंडलीकरण के नाम पर सरकार की संपत्ति की नीलामी इसी वर्ग की साजिश है। औद्योगिकरण और विकास के नाम पर यही वर्ग

आदिवासियों की साधन सामग्री को हथिया रहा है। सरकार आँखें मूँदकर सर्वहारा समाज के विकास पर पैसा खर्च करती है पर यह भ्रष्ट व्यवस्था अधिकतर पैसा स्वयं भ्रष्ट व्यवस्था के चलते ही अपनी नौकरी के अंतिम समय तक न प्रमोशन पा सके थे न क्वार्टर। वे सर्वहारा समाज के शोषण के लिए भ्रष्ट व्यवस्था को जिम्मेदार बताते हैं जिसकी झलक हम उनके उपन्यासों में देख सकते हैं।

प्रस्तुत शोध प्रबंध के अध्याय छः का शीर्षक है 'संजीव के उपन्यासों में विस्थापन से उत्पन्न धार्मिक और सांस्कृतिक संकट' इस अध्याय का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है-

६.१ धर्म का संकटः- धार्मिक पाखंड और अंधविश्वास में फँसाकर सर्वहारा समाज को प्रथम गुमराह किया जाता है फिर उसका शोषण किया जाता है। शगुन-अपशगुन, टोने-टोटके में उलझाकर इन्हें लूटा जाता है। धार्मिक पाखंडी अक्सर घोड़े की नाल, बंदर की हड्डी, बिल्ली की खेड़ी का आधार लेकर अपना उल्लू सीधा करते हैं। गाँव की धार्मिक अधिकता भूत-प्रेत आज का हौवा खड़ा करके अपने मंत्र-तंत्र शक्ति में सर्वहारा समाज के मुक्ति का ढोंग करते हैं आदिवासी के अनपढ़ और अंधविश्वासी होने के कारण उनके दिलो-दिमाग पर अरण्यमुखी संस्कृति का भूत सवार रहता है। डायन जैसी बर्बर प्रथा के चलते बहसी बनकर नारी की हत्या तक करते हैं। योजनाओं के चंगुल में फँसकर वह निर्धन बनते जा रहे हैं। मुंडन छेदन से लेकर जादू-टोने तक के लिए सर्वहारा समाज से मनमाना पैसा वसूला जाता है। पंडित पुजारी, पूजा करते-करते नारियों पर जाल बिछाते हैं। थारू आदिवासी गाय का दूध नहीं पीते। कहते हैं लेरू की आत्मा कलपति है। सर्पदंश से अगर व्यक्ति मर जाता है तो उसकी लाश को केले के तने पर बांधकर पानी में बहा देते हैं। उनकी अंधमान्यता है कि पानी बिष सोख लेता है। उनका विश्वास अस्पताल पर नहीं है। कुछ पिछड़े अंचल के गाँव भूतैले साये से लिप्त है संजीव विज्ञान के छात्र होने के कारण अवैज्ञानिक, मनगढ़ंत, अंधमान्यताओं पर अंधविश्वास दर्शाते हैं। उन्होंने अपने अनुभवों से यह जाना है कि अंधविश्वास तो शोषको का शस्त्र है। जिससे सर्वहारा समाज की बलि चढ़ाई जाती है। परिणामतः वे अपने उपन्यासों में धार्मिक पाखंड और अंधश्रद्धा का पर्दाफाश करते दिखाई देते हैं।

६.२ उत्सव और त्यौहार का संकटः- आदिवासी गैर आदिवासियों के साथ अपनी आदिम जीवन पद्धति के कारण भी एक हद तक प्रताड़ित है। अरण्यमुखी संस्कृति उनके दुख दर्द के लिए जिम्मेदार है। वह इसी संस्कृति से चिपके रहना चाहते हैं। परिणाम स्वरूप आज भी वे अविकसित

और विकास की मुख्यधारा में अपनी जगह नहीं बना पा रहे। 'गुफा का आदमी' कहानी में बोंडा आदिवासियों की बेमेल विवाह प्रथा का वर्णन किया गया है। पुरानी परंपराओं को वे आज भी आँख मूँदकर पालन करते हैं। भयंकर गरीबी के चलते बालों को तेल नहीं मिलना इसलिए बालिका से वृद्धा तक औरतों का मुंडन किया जाता है। यहाँ तेल की किल्लत की अपेक्षा परंपरा अधिक महत्व रखती है। इस बोंडा आदिवासियों में विवाह पूर्व देह संबंधों की स्वीकृति दी जाती है। केवल गाँव को भोज खिलाना पड़ता है। सोमा और तय्यब चा सोलह वर्ष की सोमा का विवाह आठ साल में शुकरा के साथ किया गया। सोमा कुछ वर्षों बाद बच्चे की माँ बनी। बच्चे का नाम मगरा रखा गया। पत्नी पति को बच्चे के समान पालती है। आठ साल की अवस्था में मगरा का विवाह सोलह साल की शुकरी के साथ किया जाता है। ससुर और पतोह हम उम्र होने की वजह से यौनाचार करते हैं। पुरुष बाल विवाह की प्रथा यहाँ प्रचलित है।

६.३ आदिवासियों की भाषा पर संकट:- सुनीति चटर्जी ने आदिवासी भाषाओं के बारे में यह चिंता व्यक्त की है कि अधिकांश भाषाएँ धीरे-धीरे मर जाएँगी। आदिवासी भाषा के अस्तित्व का सवाल आदिवासी संस्कृति व परंपरा से जुड़ा हुआ है। तथाकथित विकास कहे या बाहरी दबाव के चलते आदिम जीवन शैली में परिवर्तन अवश्यंभावी है जिसका प्रभाव संस्कृति व परंपरा व अंततः भाषाओं पर पड़ना स्वाभाविक है। आदिवासी भाषाओं का संरक्षण तभी संभव होगा जब आदिवासी संस्कृति व परंपरा पर गर्व किया जाए और आदिवासी भाषाओं में लिपिबद्ध कर संकलित किया जाए। इसके बाद अनुवाद का मुद्दा सामने आता है।

यूनेस्को की वर्ष २००९ की रिपोर्ट में विश्व की कुल ६००० भाषाओं में से गत ७५ वर्षों में २०० भाषाओं में लुप्त हो जाने का तथ्य उजागर हुआ है साथ ही २५०० भाषाओं को खतरे में बताया गया है। इनमें से १९६ भाषाएँ भारत की जिनमें अधिकांश आदिवासी भाषाएँ हैं। आदिवासी भाषाओं के लुप्त होने का प्रमुख कारण आदिवासी भाषाओं को शिक्षा का माध्यम नहीं बनाना है। दूसरा प्रमुख कारण लिपियों का अभाव है। उदाहरणार्थ संथाली भाषा आंचलिक लिपियों को अपनाती है। जो दूसरी भाषाओं से संबंधित है अर्थात् बंगाल में बंग्ला, उड़ीसा में उड़िया, धर्मांतरित संथालों में अंग्रेजी तथा बिहार, झारखंड में देवनागरी। विकसित लिपि ५ वीं लिपि के रूप में सामने आती है।

६.४ प्रचलित कथा भाषा एवं आदिवासियों की भाषा:- कथा साहित्य में आदिवासी जीवन से संबंधित संभवतया देवेंद्रनाथ सत्यार्थी का सन् १९५२ में छपा 'रथ के पहिए' नामक उपन्यास सामने आता है, जिसमें मध्य प्रदेश के गोंड आदिवासी जनजीवन को कथावस्तु बनाया गया है। इस उपन्यास में गोंड आदिवासियों की प्रामाणिक और संवेदनशील अभिव्यक्त है। 'समकालीन जनमत' (सितंबर-२००३) के संपादकीय में रामजी राय ने लिखा है कि " आदिवासियों के जीवन की दशा को गहराई से दिखाने पर राष्ट्रीयता, लोकतंत्र, सामाजिक न्याय, समानता, सभ्यता, सर्वांगीण विकास जैसे शब्दों के अर्थ खोखले लगते हैं। जिसे राष्ट्रभाषा घोषित किया गया, उसी राष्ट्रभाषा हिंदी में आदिवासियों की जिंदगी से संबंधित किताबें या साहित्यिक रचनाएँ बहुत कम मिलती हैं।" हिंदी के अधिकांश पाठकों ने आम तौर पर महाश्वेतादेवी के उपन्यासों के अनुवाद के आदिवासियों के ऐतिहासिक संघर्ष और उनकी समस्या तथा प्रतिरोधों की वजहो को जाना है शुरुआती पंक्ति में आने वाले उपन्यासों में रेणु का 'मैला आँचल' (१९५४) को लिया जा सकता है, जिसमें संथाल आदिवासियों के कुछ प्रसंग हैं। देवेंद्र सत्यार्थी ने ही 'रथ के पहिए' के पश्चात ब्रहपुत्र (१९५६) लिखा। पूर्वोत्तर के आदिवासियों पर आधारित हिंदी का यह पहला उपन्यास रहा, जिसमें आदिवासियों के जीवन के विभिन्न पक्षों के साथ प्रकृति, बाढ़ और बर्बादी की प्रतीक ब्रह्मपुत्र नदी और उसी को कथा नायिका के रूप में स्थापित किया गया है। सन् १९५६ उदय शंकर भट्ट का उपन्यास 'सागर लहरें और मनुष्य' प्रकाशित हुआ, जो आदिवासी मछुआरों की सामूहिक जिंदगी, समुद्र के साथ उनके संघर्ष और अभाव से गुजरते हुए जीवन की साकार अभिव्यक्ति है 'नट' जैसे समुदाय के कबीलाई जीवन पर केंद्रित प्रसिद्ध उपन्यास 'कब तक पुकारूं' को अध्येताओं ने आदिवासी श्रेणी में रखा है। नृतत्व शास्त्रीयों, समाज वैज्ञानिकों एवं भारतीय संविधान के प्रावधानों के तहत नट समुदाय को आदिवासी नहीं माना गया है। इसलिए इस उपन्यास को आदिवासी जीवन पर केंद्रित उपन्यास नहीं कहा जा सकता। साठोत्तरी उपन्यासों की जब चर्चा की जाती है तो कथा साहित्य में आदिवासी जीवन सीधे-सीधे दिखाई देना आरंभ होता है।